प्रकाशन तिथि : 26 सितम्बर 2014, मूल्य 3 रुपये, वर्ष 33, अंक 3, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी
(125वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (375)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिंटर्स प्राइवेट लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन : (0141) 2705581, 2707458

फैक्स : 2704127

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	3 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7100
मराठी	:	2100
कन्नड़	:	1100
कुल	:	10300

आत्मदर्शन का कौतूहल कर

ज्ञान-आनन्दादि अनन्त वैभव से भरपूर मैं ज्ञायकतत्त्व हूँ - ऐसा अंतर से भेदज्ञान करे, व्यवहार के जो विकल्प आयें उनसे अपने को भिन्न जाने, गेहूँ और कंकड़ भिन्न करे ऐसे ही भगवान आत्मा को राग से भिन्न करे, तो उसके बल से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा। भाई ! तेरी वस्तु पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित ज्यों की त्यों भीतर पड़ी है। एकबार प्रसन्न होकर देख कि अहा ! ऐसी वस्तु मैंने कभी दृष्टि में नहीं ली थी। पर्याय के निकट भीतर प्रभु विराजता है वहाँ दृष्टि को, मतिश्रुत की पर्याय को ले जा, त्रैकालिक ध्रुव को ध्येय बना दे, तो तुझे आत्मा के दर्शन होंगे और तुझे आश्चर्य होगा कि 'अहो ! यह मैं ! ऐसे आत्मदर्शन के लिए तूने कभी सच्चा कौतूहल ही नहीं किया।' 154

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ -33-34

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2540) 375 अंक : 3

कर रे ! कर रे ! कर रे !...

कर रे ! कर रे ! कर रे ! तू आतम हित कर रे।
काल अनन्त गयो जग भमतैं, भव भव के दुख हर रे।।
लाख कोटि भव तपस्या करतैं, जीतो कर्म तेरी जर रे।
स्वास उस्वासमाहिं सो नासै, जब अनुभव चित धर रे।।
कर रे ! कर रे ! कर रे ! ।।1।।

काहे कष्ट सहै बनमांहीं, राग दोष परिहर रे।
काज होय समभाव बिना नहिं, भावो पचि पचि मर रे।।
कर रे ! कर रे ! कर रे ! ।।2।।

लाख सीख की सीख एक यह, आतम निज, पर पर है।
कोट ग्रंथ को सार यही है, 'द्यानत' लख भव तर रे।।
कर रे ! कर रे ! कर रे ! ।।3।।

– कविवर पण्डित द्यानतरायजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(66) जिसको तत्त्वनिर्णय करना है, उसको तत्त्वनिर्णय में प्रतिकूलता कुछ है ही नहीं। प्रथम तो संयोग आत्मा में आता ही नहीं, संयोग तो आत्मा से भिन्न ही है; इसलिये प्रतिकूल संयोग वास्तव में आत्मा में है ही नहीं। फिर बाह्य संयोग तो सातवें नरक में अनन्त प्रतिकूल हैं, तथापि वहाँ भी अनादि का मिथ्यादृष्टि जीव तत्त्वनिर्णय करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। इससे सिद्ध हुआ कि प्रतिकूलता आत्मकल्याण में कोई बाधा नहीं डालती।

– आत्मधर्म : फरवरी 1982, पृष्ठ 24

(67) जो शुभ को मोक्ष का साधन मानता है, उसके मत में तो पुद्गलाश्रित ही मोक्षमार्ग हो गया, क्योंकि शुभभाव पुद्गलाश्रित है, वह कहीं आत्मस्वभावाश्रित नहीं है। मोक्षमार्ग तो आत्मस्वभावाश्रित है और पुद्गलाश्रित होने वाले भाव मोक्षमार्ग का कारण कदापि नहीं हो सकते। धर्म अध्यात्म-पद्धतिरूप है। अध्यात्म-पद्धति अर्थात् शुद्धपरिणाम और वह आत्मस्वभाव के आश्रित है, पर का आश्रय उसमें किंचित् भी नहीं है। **– आत्मधर्म : मार्च 1982, पृष्ठ 21**

(68) भाई ! तुझे राग का तो अनादि से परिचय है, इसलिए राग की बात तुझे सुगम लगती है। जब कोई राग को मोक्षमार्ग कह दे तो वह बात तेरे हृदय में झट बैठ जाती है, किन्तु वह राग मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो अध्यात्मपद्धतिरूप है, आत्मा के आश्रय से होनेवाली शुद्धचेतनापरिणति ही मोक्षमार्ग है; उसके द्वारा ही मोक्ष सुगमता से मिल सकता है, अत: वही सरल मार्ग है – सच्चा मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग से मोक्षप्राप्ति दुर्गम है, अशक्य है। **– आत्मधर्म : अप्रैल 1982, पृष्ठ 17**

(69) जो तीन को जाने वो तीन को पावे। (1) जड़ से पृथक्त्व, (2) विभाव की विपरीतता व (3) स्वभाव की सामर्थ्य को भलीभाँति जानता है; वह (1) जड़ से

भिन्नता (2) विभाव से विमुखता व (3) स्वभाव की सन्मुखता को शीघ्र ही प्राप्त करता है अर्थात् वह शीघ्र ही मुक्तिरूपी लक्ष्मी को वरण करता है।

– आत्मधर्म : मई 1982, पृष्ठ 4

(70) भाई ! प्रथम वस्तुस्वरूप क्या है, उसकी समझ तो कर ! वीतरागी के राग होता नहीं और रागी जीव को शुभ अथवा अशुभ राग आए बिना रहता नहीं। समझो तो जरा। छोड़ना क्या है ? क्या तुम जड़ की क्रिया कर सकते हो, जो उसे छोड़ा जाए ? अरे ! जड़ की क्रिया तो जीव कर ही नहीं सकता, अत: उसे छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं है। जो शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं, वे एक समय रहकर दूसरे समय स्वयं फिर जाते हैं; अत: उनके छोड़ने की बुद्धि भी व्यर्थ है। समस्त रुचि जो राग के ऊपर है, उसको फेरकर स्वभाव की रुचिकर ! दिशा बदल दे ! अज्ञानी अपनी दिशा नहीं बदलते, अत: उनकी दशा भी नहीं बदलती। अर्थात् वे संसार में ही भटकते हैं और जो जीव राग की ओर का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव की दशा की ओर झुकाव रखते हैं, उनकी दशा बदल जाती है और उन्हें मोक्ष प्राप्त हो जाता है। **– आत्मधर्म : जून 1982, पृष्ठ 16**

(71) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप सुनते हुए जिसे अभी कुदेव आदि का आदरभाव नहीं छूटा है, वह तीव्र अशुभोपयोगी है तथा कदाचित् किसी को कुदेवादि का संयोग छूट जाये; परन्तु अन्तर आत्मा का अनुभव न हो, तब भी वह मिथ्यादृष्टि ही है, अशुभोपयोगी ही है। **– आत्मधर्म : जुलाई 1982, पृष्ठ 25**

(72) देखो, यह साधकजीव का व्यवहार और उसकी विचारश्रेणी, इसको स्वभाव का कितना रंग है ! बार-बार उसका ही विचार, उसका ही मनन, उसके ही ध्यान-अनुभव का अभ्यास, उसका ही गुणगान, उसका ही श्रवण; सर्वप्रकार से उसकी ही भक्ति। वह जिस किसी क्रिया में प्रवर्तता है, उसे उसमें सर्वत्र शुद्धस्वरूप की सन्मुखता ही मुख्य है।

– आत्मधर्म : अगस्त 1982, पृष्ठ 25

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे)

पाँच भावों के संदर्भ में सामान्य जानकारी

इसप्रकार २+९+१८+२१+३=५३ – **ये त्रेपन प्रकार के भाव जीव के स्वतत्त्व हैं, असाधारण भाव हैं; जो मात्र जीवों में ही पाये जाते हैं, अन्य द्रव्यों में नहीं।**

अघातिया कर्मों का न तो उपशम होता है और न क्षयोपशम। उनकी तो मात्र दो दशायें होती हैं या तो उनका उदय होता है या क्षय।

घातिया कर्मों में ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय कर्मों की अनादि से क्षयोपशम अवस्था होती है और उनका क्षायोपशमिक भाव पाया जाता है। इन तीन कर्मों के देशघाति स्पर्धकों के उदय से औदयिक भाव भी पाया जाता है। इन तीनों कर्मों का क्षय होने पर क्षायिक भाव पाया जाता है।

एक मात्र मोहनीय कर्म ऐसा है कि जिसकी चार दशायें होती हैं – उपशम, क्षय, क्षयोपशम और उदय। इसलिए मोहनीय कर्म के निमित्त से चार प्रकार के भाव होते हैं – औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और औदयिक भाव।

पारिणामिकभाव किसी कर्म के निमित्त से नहीं होते। वे तो आत्मा के स्वभावभाव हैं। इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं – **उपशम मात्र मोहनीय कर्म का होता है; क्षयोपशम चार घातिया कर्मों का होता है, क्षय और उदय आठों कर्मों का होता है।**

१. औपशमिक भाव सादि-सान्त हैं।

२. क्षायिक भाव सादि-अनंत हैं।

३. क्षायोपशमिक भाव भव्यजीवों की अपेक्षा अनादि-सान्त हैं, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, संयमासंयम और क्षायोपशमिक चारित्र सादि-सांत हैं और अभव्यजीवों की अपेक्षा अनादि-अनन्त हैं।

४. औदयिक भाव भी भव्यजीवों की अपेक्षा अनादि-सान्त हैं और अभव्यजीवों की अपेक्षा अनादि-अनंत हैं।

५. **पारिणामिक भाव अनादि-अनंत हैं।**

औपशमिक भाव प्रगट करने की अपेक्षा एकदेश उपादेय हैं, क्षायिक भाव प्रगट करने की अपेक्षा सकलदेश उपादेय हैं।

अज्ञानी के क्षायोपशमिक भाव हेय हैं और ज्ञानी के एकदेश उपादेय हैं। औदयिक भाव पूर्णत: हेय हैं तथा भव्यत्व-अभव्यत्वरूप पारिणामिक भाव ज्ञेय हैं और जीवत्वरूप अपना परमपारिणामिक भाव श्रद्धेय हैं, परमज्ञेय हैं और ध्येय हैं। मैं परमपारिणामिकभावरूप ही हूँ – इसी भाव के आश्रय से धर्म होता है।

जब यह आत्मा स्वयं के जीवत्वरूप परमपारिणामिक भाव को जानता है, पहिचानता है, उसमें अपनापन स्थापित करता है, उसका श्रद्धान करता है और सम्यग्ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक उसी में जम जाता है, रम जाता है, समा जाता है, उसी के ध्यान में मग्न हो जाता है; सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमित होता है; औपशमिक, क्षायिक और सम्यक् क्षायोपशमिक भावरूप परिणमता है तो सम्पूर्ण औदयिक भावों का अभाव कर देता है, संसार से मुक्त हो जाता है, सिद्धदशारूप परिणमित होकर अनन्तकाल तक अनन्त सुख का उपभोग करता है।

उक्त ५२ भावों के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रकट नहीं होते; एकमात्र परमपारिणामिकभाव के आश्रय से ही रत्नत्रयरूप धर्म प्रगट होता है। **अत: एक मात्र आश्रय करने योग्य परम उपादेय यही ५३वाँ भाव है।**

हम कह सकते हैं कि –

१. पारिणामिक भाव के बिना कोई जीव नहीं है।

२. औदयिक भाव के बिना कोई संसारी जीव नहीं है।

३. क्षायोपशमिक भाव के बिना कोई छद्मस्थ नहीं है।

४. क्षायिक भाव के बिना क्षायिक समकिती, क्षायिक चारित्रवंत और अरहंत तथा सिद्ध नहीं हैं।

५. औपशमिकभाव के बिना कोई धर्म का आरंभ करनेवाला नहीं है।

वस्तुत: निश्चय से स्वतत्त्व तो परमपारिणामिकभाव ही है; शेष ५२ भाव व्यवहार से स्वतत्त्व हैं।

अत: जिन भव्यजीवों को अनन्तकाल तक के लिए अनन्त सुखरूप परिणमित होना है, अनन्त सुखी होना है, मुक्त दशा प्राप्त करना है, मोक्ष में जाना है; **वे भव्यजीव परमपारिणामिक भावरूप निज भगवान आत्मा का आश्रय करें, उसी को जाने, निजरूप जाने, निजरूप माने, उसी में अपनापन स्थापित करे, उसी में जम जाये, रम जाये, समा जाये और अनन्तकाल तक अनन्तसुख का उपभोग करें।**

जीवतत्त्वार्थ का लक्षण

जीव तत्त्वार्थ की चर्चा चल रही है। जीव के ५३ असाधारण भावों की चर्चा के उपरांत **अब आत्मतत्त्व की पहिचान के लिए जीवतत्त्वार्थ के लक्षण पर विचार करते हैं।**

जीव के लक्षण के संदर्भ में दो सूत्र प्राप्त होते हैं; जो इसप्रकार हैं –

उपयोगो लक्षणम् ।।८।।

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।।९।।

चैतन्यस्वभाव का अनुसरण करनेवाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते हैं। उपयोग जीव का लक्षण है।

वह उपयोग दो प्रकार का है – ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है।

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल – ये पाँच ज्ञान (सम्यग्ज्ञान)और कुमति, कुश्रुत और कुअवधि – ये तीन अज्ञान (मिथ्याज्ञान) इसप्रकार ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है।

इसीप्रकार चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन – ये चार दर्शन दर्शनोपयोग के प्रकार हैं।

चक्षु इन्द्रिय से होनेवाले ज्ञान के पहले जो दर्शन होता है, वह **चक्षुदर्शन** है; चक्षु को छोड़कर अन्य चार इन्द्रियों और मन से होनेवाले ज्ञान के पहले जो दर्शन होता है, वह **अचक्षुदर्शन** है; अवधिज्ञान के पहले जो दर्शन होता है, वह **अवधिदर्शन** है और केवलज्ञान के साथ जो दर्शन होता है, वह **केवलदर्शन** है।

ध्यान रहे चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शन तो ज्ञान होने के पहले होते हैं, पर केवलदर्शन केवलज्ञान के साथ ही होता है।

इसी बात को द्रव्यसंग्रह में इसप्रकार व्यक्त किया गया है –

अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ।।६।।

व्यवहारनय से आठ प्रकार के ज्ञान और चार प्रकार के दर्शन को सामान्यरूप से जीव का लक्षण कहा गया है। **शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से शुद्ध ज्ञान-दर्शन जीव के लक्षण कहे हैं।**

इस गाथा के अर्थ में ब्रह्मदेव द्वारा रचित संस्कृत टीका में कहा गया है कि **यहाँ सामान्य शब्द का अर्थ विवक्षा का अभाव है।**

तात्पर्य यह है कि यहाँ सम्यक्-मिथ्या का भेद नहीं है, संसारी-मुक्त का भेद नहीं है।

सम्यक्-मिथ्या के भेद बिना सामान्य उपयोग सभी जीवों का लक्षण है, चाहे वे संसारी जीव हों या मुक्त जीव हों, चाहे ज्ञानी हों, चाहे अज्ञानी हों। इस लक्षण में निगोद से लेकर मोक्ष तक के सभी जीव समाहित हैं।

ध्यान रहे ज्ञानोपयोग में तो सम्यक्-मिथ्या के भेद होते हैं; पर दर्शनोपयोग में सम्यक्-मिथ्या का भेद नहीं होता; क्योंकि दर्शनोपयोग निराकार है। कहा भी गया है कि **निराकारं दर्शनं, साकारं ज्ञानं** – दर्शनोपयोग निराकार होता है, निर्विकल्प होता है और ज्ञानोपयोग साकार अर्थात् सविकल्प होता है।

तत्त्वार्थसूत्र में मात्र उपयोग को जीव का लक्षण कहा और फिर उसके बाद अगले सूत्र में उपयोग के भेद गिनाये। कहा है कि वह उपयोग दो प्रकार का है तथा उक्त दो प्रकारों में पहले के आठ भेद हैं और दूसरे के चार भेद हैं।

पहला कौन और दूसरा कौन ? इसप्रकार का प्रश्न होने पर सूत्र से ही स्पष्ट हो जाता है कि जिसके आठ भेद हैं, वह पहला कहा और जिसके चार भेद हैं, वह दूसरा है। तात्पर्य यह है कि आठ भेदवाला ज्ञानोपयोग पहला और चार भेदवाला दर्शनोपयोग दूसरा है।

जबकि द्रव्यसंग्रह में सीधा ही कह दिया कि आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन सामान्य से जीव का लक्षण है – यह व्यवहारनय का कथन है; परन्तु शुद्धनय से शुद्ध दर्शन और शुद्ध ज्ञान जीव का लक्षण है।

बृहद्द्रव्यसंग्रह में ब्रह्मदेव की संस्कृत टीका में उक्त नय विवक्षा को विस्तार से स्पष्ट किया है, जिन्हें विशेष जानने की इच्छा हो, वे वहाँ से देखें।

यद्यपि द्रव्यसंग्रह और उसकी टीका में सारी विवक्षायें स्पष्ट की हैं; तथापि तत्त्वार्थसूत्र में सामान्य से उपयोग को ही जीव का लक्षण कहा है; उसमें उन्होंने कोई नयविवक्षा नहीं लगाई और अगले सूत्र में उपयोग के भेद-प्रभेद गिनाकर यह स्पष्ट कर दिया कि उक्त आठों प्रकार के ज्ञानों और चार प्रकार के दर्शनों में कोई भी ज्ञान या दर्शन क्यों न हो, जिसमें एक भी ज्ञान-दर्शन है, वह जीव है।

यहाँ जीव शब्द में सामान्य से सभी जीव आ गये और उपयोग शब्द में सभी उपयोग आ गये।

जीव होने के लिए यह जरूरी नहीं है कि उसे आठ ज्ञानों में कौन सा ज्ञान हो

और चार दर्शनों में कौन सा दर्शन हो। यह बताने के लिए ही यह कहा है कि **सामान्य ज्ञान और सामान्य दर्शन जीव का लक्षण है।**

जो विवक्षित वस्तु को अन्य वस्तुओं से जुदा करे, उसे लक्षण कहते हैं।

लक्षण दो प्रकार के होते हैं – आत्मभूत लक्षण और अनात्मभूत लक्षण। उष्णता अग्नि का आत्मभूत लक्षण है; क्योंकि उष्णता अग्नि से कभी पृथक् नहीं होती। दण्डेवाले पुरुष को दण्डी कहते हैं। दण्डी पुरुष का दण्डा लक्षण अनात्मभूत है; वह उससे कभी भी पृथक् हो सकता है। यह अनात्मभूत लक्षण मात्र तत्काल का प्रयोजन सिद्ध करता है; आत्मभूत लक्षण सदा काम आता है।

उपयोग जीव का आत्मभूत लक्षण है; वह जीव की सदाकाल रहनेवाली पहिचान है। वह जीव में सदाकाल तो रहता ही है; साथ ही अन्य अजीव वस्तुओं में नहीं पाया जाता। अत: वह पूर्णत: निर्दोष लक्षण है; क्योंकि इसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव – इनमें से कोई भी दोष नहीं है।

सच्चे लक्षण के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह लक्ष्य में व्याप्त हो, अलक्ष्य में न हो और वह लक्ष्य में संभव हो, असंभव न हो।

जीव का उपयोग लक्षण लक्ष्य में व्याप्त है, अलक्ष्य में नहीं है और लक्ष्य जीव में उसकी संभावना पूरी तरह है।

उपयोग सभी जीवों में प्राप्त होता है; अत: अव्याप्ति दोष से रहित है, जीवों के अतिरिक्त अजीवों में नहीं पाया जाता; अत: यह अतिव्याप्ति दोष से रहित है और सभी जीवों में उपयोग होता ही है; अत: असंभव दोष से भी दूषित नहीं है।

प्रश्न – स्वरूप और लक्षण में क्या अन्तर है ?

उत्तर – प्रत्येक पदार्थ के गुण और पर्यायें, उसका स्वरूप हैं और जिससेपदार्थों की पहिचान की जा सके, उसे लक्षण कहते हैं।

इस उपयोग लक्षण से जीव को जानकर-पहचान कर, निजात्मारूप जीव में अपनापन स्थापित कर, उसमें ही समाहित हो जाना, उसमें ही रत हो जाना धर्म है, अतीन्द्रिय सुख-शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है।।८-९।।

जीवतत्त्वार्थ के भेद-प्रभेद

जीव तत्त्वार्थ को जानने के लिए उपयोग को जीव का लक्षण बताया और फिर उपयोग के भेद-प्रभेद समझाये।

अब उपयोग लक्षण से लक्षित उपयोगवान **जीवों के भेद-प्रभेद बतलाते हैं;** जो इसप्रकार हैं –

संसारिणो मुक्ताश्च ।।१०।।

समनस्काऽमनस्का: ।।११।।

संसारिणस्त्रसस्थावरा: ।।१२।।

जीव दो प्रकार के हैं – संसारी और मुक्त।

उनमें से संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं – समनस्क और अमनस्क।

सैनी-असैनी के साथ-साथ संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से भी दो प्रकार के होते हैं।

उपयोग लक्षण से लक्षित पहले से चौदहवें गुणस्थान तक के सभी जीव संसारी हैं और गुणस्थानों से पार सिद्ध जीवों को मुक्त जीव कहते हैं।

अब यहाँ संसारी जीवों के भेद बताते हैं; जो इसप्रकार हैं –

मन सहित जीवों को समनस्क और मन रहित जीवों को अमनस्क कहते हैं। समनस्क जीवों को संज्ञी और सैनी तथा अमनस्क जीवों को असंज्ञी और असैनी भी कहते हैं।

एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के सभी जीव और असैनी पंचेन्द्रिय जीव असंज्ञी हैं, अमनस्क हैं तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी या समनस्क होते हैं।

एकेन्द्रिय से असैनी पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव नियम से तिर्यंच ही होते हैं और सैनी पंचेन्द्रिय जीव चारों गतियों में पाये जाते हैं।

सैनी-असैनी और त्रस-स्थावर – ये सभी भेद संसारी जीवों के हैं – यह बताने के लिए ही दोनों के बीच में **संसारिण:** पद डाला गया है।

यह **देहरी के दीपक** जैसा प्रयोग है। जिसप्रकार देहरी पर रखा गया दीपक कमरे में भी उजेला करता है और आँगन में भी।

उसीप्रकार यह **संसारिण:** पद भी देहरी का दीपक है। यह सैनी-असैनी पर भी लगता है और त्रस-स्थावर पर भी।

इसे मध्य दीपक भी कहते हैं।

यदि ऐसा नहीं करते तो क्रमानुसार संबंधी नियम के अनुसार यह भी समझा जा सकता था कि सैनी-असैनी ये भेद तो संसारी जीवों के हैं और त्रस-स्थावर भेद मुक्त जीवों के हैं।

यहाँ एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि हमारा हित तो स्वजीव को जानने में ही है; क्योंकि हमे उसमें अपनापन स्थापित करना है, उसका ध्यान करना है, उसका ध्यान रखना है।

हमें इन त्रस-स्थावर और संज्ञी-असंज्ञी जीवों के जानने में क्यों उलझाते हो ?

अरे, भाई ! हम तुम्हें उलझाते नहीं हैं; हम तो इस संसार में फंसे जीवों को सुलझाने का मार्ग सुझाते हैं।

संसारी जीवों के इन प्रकारों को समझाने का एक प्रयोजन तो यह है कि ये भी जीव हैं; इन्हें भी हम-तुम जैसी सुख-दुःख की अनुभूति होती है, सुख-दुःख का अनुभव होता है। हमें इनसे जीवों जैसा ही व्यवहार करना चाहिए। हमारे हृदय में इनके प्रति करुणाभाव रहे – इसमें इनके जीवत्व ज्ञान करना आवश्यक है।

दूसरे हम भी भूतकाल में इन अवस्थाओं में रहे हैं; यदि अभी नहीं संभले तो भविष्य में भी अनन्तकाल तक इन पर्यायों में बिताना होगा, भटकना होगा।।११-१२।।

स्थावर जीवों के भेद

विगत सूत्र में संसारी जीवों के त्रस और स्थावर – इसप्रकार के दो भेद बताये हैं; अत: अब यहाँ उन दोनों के बारे में समझाते हैं।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ।।१३।।

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ।।१४।।

पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पति कायिक – ये पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं, एकेन्द्रिय जीव हैं।

एकेन्द्रिय जीवों को ही स्थावर जीव कहते हैं।

दो इन्द्रिय आदि जीव त्रस जीव हैं।

ये पृथिवी आदि पाँचों स्थावर जीवों के आगम में चार-चार प्रकार बताये हैं; जो इसप्रकार हैं – **पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव।**

१. जो स्वयं से ही बनी हुई अचेतन जमीन है, उसे **पृथिवी** कहते हैं।

२. जिस पृथिवी में से जीव निकल गया हो, उसे **पृथिवीकाय** कहते हैं।

३. जीव सहित पृथिवी को **पृथिवीकायिक** कहते हैं।

४. जो जीव पहले शरीर को छोड़कर पृथिवीकाय में जन्म लेने के लिए जा रहा है, जब तक वह पृथिवी को अपने शरीररूप से ग्रहण नहीं कर लेता, तबतक उस जीव को **पृथिवी जीव** कहते हैं।

यहाँ जिसप्रकार चार भेदों को पृथिवी पर घटित किया है; उसीप्रकार वनस्पति

पर भी घटित करते हैं।

१. जो निर्जीव वनस्पति है, वह **वनस्पति**। जैसे लकड़ी और लकड़ी से बनी हुई वस्तुएँ।

२. जिस वनस्पति में से अभी-अभी आज ही जीव निकला है, वह **वनस्पति काय** है।

३. जिस वनस्पति में अभी भी जीव विद्यमान है, उसे **वनस्पतिकायिक** कहते हैं।

४. उक्त तीनों प्रकारों को सामान्य रीति से वनस्पति भी कह देते हैं। जो जीव पहले शरीर को छोड़कर वनस्पतिकाय में जन्म लेने जा रहा है; जबतक वह वनस्पति को अपने शरीर के रूप में ग्रहण नहीं कर लेता, तबतक वह जीव **वनस्पति जीव** है।

यह जान लेने का लाभ यह है कि असल में सजीव वनस्पति तो वनस्पति कायिक ही है; अत: अहिंसाव्रत की दृष्टि से एकमात्र यही अभक्ष्य है।

इसीप्रकार अप् (जल), तेज और वायु के बारे में भी समझ लेना चाहिए।

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय एवं चारों गतियों के पंचेन्द्रिय जीव – ये सभी त्रस जीव हैं।

ध्यान रहे दो इन्द्रिय से अरहंत भगवान तक, तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान तक, जबतक कि वे सिद्ध नहीं हो जाते; तबतक सभी संसारी जीव त्रस जीव हैं।

जब हम यह कहते हैं कि अरहंत भी संसारी जीव है तो लोगों को बहुत आश्चर्य लगता है कि अरहंत भी संसारी ?

अरे, भाई ! जब हमने समस्त जीवों को दो भागों में बांटा है और एक भाग में सिद्धों को रखा है तो दूसरे भाग में संसार के शेष सभी जीव सहज संसारी जीवों में ही आ गये। इसमें अधिक सोचने की बात ही क्या है ?।।१३-१४।।

पाँच इन्द्रियाँ और उनके भेद-प्रभेद

त्रस जीवों की परिभाषा में दो इन्द्रिय आदि जीवों को त्रस कहा गया है तो सहज प्रश्न उत्पन्न होता है कि **इन्द्रियाँ कितनी होती हैं, उनका क्या स्वरूप है ?**

उक्त प्रश्नों का उत्तर आगामी सूत्रों में दिया जा रहा है; जो इसप्रकार है –

पञ्चेन्द्रियाणि ।।१५।।

द्विविधानि ।।१६।।

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।।१७।।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।।१८।।

इन्द्रियाँ पाँच होती हैं।

वे पाँचों इन्द्रियाँ दो-दो प्रकार की हैं – द्रव्येन्द्रियाँ और भावेन्द्रियाँ।

द्रव्येन्द्रियाँ निर्वृत्ति और उपकरणरूप हैं।

भावेन्द्रियाँ लब्धि और उपयोगरूप हैं।

इन्द्रियों के नाम तो आगे सूत्र द्वारा पृथक् से बताये जायेंगे। यहाँ तो बस इतना बताना इष्ट है कि इन्द्रियाँ पाँच ही होती हैं, कम-ज्यादा नहीं।

संसारी जीव की पहिचान के चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं।

जैनेतर दर्शनों में वचन, हाथ, पैर, गुदा और लिंग को भी इन्द्रिय कहा जाता है। परन्तु ये कर्मेन्द्रियाँ हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं; चूंकि यहाँ ज्ञान का प्रकरण है; अत: यहाँ इन्द्रियों के रूप में ज्ञानेन्द्रियों को ही लिया है, कर्मेन्द्रियों को नहीं।

उक्त पाँच इन्द्रियाँ भी दो प्रकार की होती हैं।

तात्पर्य यह है कि इन द्रव्य और भाव के भेदों को पाँचों इन्द्रियों पर घटित करना चाहिए। जैसे – द्रव्य स्पर्शन इन्द्रिय और भाव स्पर्शन इन्द्रिय, द्रव्य रसना इन्द्रिय और भाव रसना इन्द्रिय, द्रव्य घ्राण इन्द्रिय और भाव घ्राण इन्द्रिय, द्रव्य चक्षु इन्द्रिय और भाव चक्षु इन्द्रिय तथा द्रव्य श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रिय और भाव श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रिय।

इन्द्रियाकार पुद्गल और आत्मप्रदेशों की रचना द्रव्येन्द्रियाँ हैं तथा क्षयोपशम विशेष से होनेवाला आत्मा का ज्ञान-दर्शनरूप परिणाम भावेन्द्रियाँ हैं।

नामकर्म से जिसकी रचना हो, उसे निर्वृत्ति कहते हैं। बाह्य निर्वृत्ति और आभ्यन्तर निर्वृत्ति के भेद से निर्वृत्ति दो प्रकार की होती है।

आत्मप्रदेशों की चक्षु आदि इन्द्रिय के आकाररूप रचना आभ्यन्तर निर्वृत्ति है और शरीर पुद्गलों की इन्द्रियों के आकाररूप रचना होना बाह्य निर्वृत्ति है।

जो निर्वृत्ति का उपकार करे, वह उपकरण है।

वह उपकरण भी निर्वृत्ति के समान दो प्रकार का होता है – आभ्यन्तर उपकरण और बाह्य उपकरण। जिसप्रकार चक्षु इन्द्रिय में जो काला व सफेद मण्डल (गटा) है; वह आभ्यन्तर उपकरण है और पलक वगैरह बाह्य उपकरण हैं।

इसीप्रकार अन्य इन्द्रियों पर भी समझ लेना चाहिए।

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं और लब्धि के अनुसार **आत्मा का जो जाननेरूप परिणमन होता है, उसे उपयोग कहते हैं।**

ये लब्धि और उपयोग ही भावेन्द्रियाँ हैं ।।१५-१८।।

इन्द्रियाँ, उनके विषय और स्वामी

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु:श्रोत्राणि ।।१९।।

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्था: ।।२०।।

श्रुतमनिन्द्रियस्य ।।२१।।

वनस्पत्यन्तानामेकम् ।।२२।।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ।।२३।।

संज्ञिन: समनस्का: ।।२४।।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र – ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द – ये क्रम से उन पाँच इन्द्रियों के पाँच विषय हैं।

श्रुत, मन का विषय है।

वनस्पति है अन्त में जिनके, ऐसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वनस्पतिकायिक और वायुकायिक जीवों के एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्यादि के क्रमश: एक-एक इन्द्रिय बढ़ती जाती है।

मन सहित जीवों को संज्ञी कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि **स्पर्श,** स्पर्शन इन्द्रिय का विषय है; **रस,** रसनेन्द्रिय का विषय है; **गंध,** घ्राण इन्द्रिय का विषय है; **वर्ण,** चक्षु इन्द्रिय का विषय है और **शब्द,** कर्ण इन्द्रिय का विषय है।

स्पर्शन इन्द्रिय का विषय स्पर्श **आठ** प्रकार का है – शीत-उष्ण, रूखा-चिकना, कोमल-कठोर और हल्का-भारी।

रसना इन्द्रिय का विषय रस **पाँच** प्रकार का है – खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला और चरपरा।

घ्राण इन्द्रिय का विषय गंध **दो** प्रकार की है – सुगन्ध और दुर्गन्ध।

चक्षु इन्द्रिय का विषय वर्ण **पाँच** प्रकार का है – काला, पीला, नीला, लाल और सफेद।

कर्ण इन्द्रिय का विषय शब्द **सात** प्रकार के हैं – षढज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद।

इसप्रकार पाँच इन्द्रियों के विषय २७ प्रकार के हैं।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने विषय को ही ग्रहण करती है। न तो कोई इन्द्रिय दूसरी इन्द्रिय के विषय को ग्रहण करती है और न ग्रहण कर सकती है।

प्रत्येक इन्द्रिय का अपने-अपने विषय में इन्द्रवत् व्यवहार है; वह अपने विषय में पूर्ण स्वतंत्रता के साथ कार्य करती है, उसमें किसी अन्य इन्द्रिय का कोई हस्तक्षेप नहीं होता; इसीलिए उसे इन्द्रिय कहते हैं।

श्रुतज्ञान के विषयभूत पदार्थ को श्रुत कहते हैं; वह श्रुत अनिन्द्रिय अर्थात् मन का विषय है। **श्रुतज्ञान का होना मन का प्रमुख कार्य है। अपने इस कार्य में वह किसी इन्द्रिय की सहायता नहीं लेता।**

ध्यान रहे श्रोत्रेन्द्रियजन्य ज्ञान को या श्रोत्रेन्द्रिय के विषय को श्रुत नहीं कह सकते; क्योंकि वह इन्द्रियजन्य होने से मतिज्ञान ही है।

मतिज्ञान के बाद जो विचार केवल मनजन्य होता है, वह श्रुतज्ञान है।

तात्पर्य यह है कि पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवों के एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है। **निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पाँच प्रकार के स्थावर जीवों के मात्र स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है।**

इसे इसप्रकार भी कह सकते हैं कि एक स्पर्शन इन्द्रिय के स्वामी पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं।

कृमि, लट, शंख, जोंक आदि के स्पर्शन और रसना – ये दो इन्द्रियाँ होती हैं; पिपीलिका माने चींटी, खटमल आदि के स्पर्शन, रसना और घ्राण – ये तीन इंद्रियाँ होती हैं; भौंरा, मक्खी, मच्छर आदि के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु – ये चार इंद्रियाँ होती हैं; और मनुष्य, देव, नारकी एवं पंचेंद्रिय तिर्यंचों के पाँचों इंद्रियाँ होती हैं।

मन सहित जीवों को संज्ञी और मन रहित जीवों को असंज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के सभी जीव नियम से असंज्ञी और तिर्यंच होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में संज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। मनुष्य, देव और नारकी नियम से संज्ञी ही होते हैं।

इसप्रकार **संज्ञी जीव चारों गतियों में पाये जाते हैं।।१९-२४।।**

एक गति से अन्य गति में जाने के नियम

जब यह जीव एक देह छोड़कर अन्य देह को धारण करता है तो कैसे करता है – इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं –

विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।२५।।

अनुश्रेणिः गतिः ।।२६।।

विग्रहगति में कर्मयोग होता है।

गति श्रेणी के अनुसार होती है।

विग्रह का अर्थ है शरीर। आगामी शरीर के लिए जो गति अर्थात् गमन, उसका नाम है विग्रहगति। एक गति को छोड़कर अगली गति में जब जीव जाता है; तब पुरानी गति तो छोड़ दी और अभी नई गति में पहुँचा नहीं; उन दोनों के बीच का जो समय है, उसे विग्रहगति कहते हैं। उस विग्रहगति में जीव के साथ कर्म अर्थात् कार्माणशरीर तो रहता है, पर नोकर्म अर्थात् यह औदारिकादि शरीर नहीं रहता।

तात्पर्य यह है कि **जिस अवस्था में कर्म का ग्रहण होने पर भी नोकर्म का ग्रहण नहीं होता, वह विग्रह है। इस विग्रह के लिए होनेवाली गति को विग्रहगति कहते हैं।**[१]

कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं और आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन को योग कहते हैं।

आत्मप्रदेशों के इस परिस्पन्दन को कार्मणशरीर निमित्तरूप है; इसलिए उसे कर्मयोग या कार्मण कर्मयोग कहते हैं। इसप्रकार हम देखते हैं कि **विग्रह गति में भी नये कर्मों का आस्रव होता है।**

मूल मुद्दे की बात यह है कि **पहले बँधे हुए कर्म अर्थात् कार्मण शरीर तो अगले भव में जीव के साथ जाता है; पर नोकर्म अर्थात् औदारिक आदि नोकर्मरूप शरीर जीव के साथ नहीं जाते।**

जब शरीर नहीं जाता तो फिर माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि, मकान-जायदाद आदि कैसे जा सकते हैं?।

लोक के मध्य से लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रम से स्थित आकाश प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणी कहते हैं।

मरण के समय जब जीव एक भव को छोड़कर दूसरे भव के लिए गमन करते हैं और मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करते हैं; तब **उनकी गति अनुश्रेणी अर्थात् श्रेणी के अनुसार ही होती है।**

पुद्गल का शुद्ध परमाणु भी जब एक समय में चौदह राजू गमन करता है, तब वह भी श्रेणी के अनुसार ही गमन करता है।

उपर्युक्त श्रेणी की छह दशायें होती हैं –

१. पूर्व से पश्चिम २. उत्तर से दक्षिण तथा ३. ऊपर से नीचे।

अन्य तीन इनसे उल्टी ४. पश्चिम से पूर्व, ५. दक्षिण से उत्तर और ६. नीचे से ऊपर।

तात्पर्य यह है कि विग्रहगति में जीवों का गमन श्रेणी के अनुसार ही होता है।।२५-२६।।

(क्रमशः)

छहढाला प्रवचन

मोक्षमहल की सीढी एवं उसकी दुर्लभता

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ, सुन, चेत, सयाने काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

श्रेणिक को नरक में भी भिन्न आत्मा का भान है और सम्यक्त्व के प्रताप से कर्मों की निर्जरा हो रही है; वहाँ भी उन्हें निरन्तर तीर्थंकर कर्म प्रकृति बंध रही है। नरक से निकलकर वह जीव इस भरतक्षेत्र की आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होगा। उनके गर्भागमन के छह मास पूर्व इन्द्र-इन्द्राणी यहाँ आकर उनके माता-पिता का सम्मान करेंगे तथा उनके आंगन में रत्नवृष्टि होगी। वह जीव अभी तो नरक में है। बाद में जब माता के उदर में आयेगा, तब भी वह जीव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान एवं अवधिज्ञान सहित होगा। मैं देह नहीं, नारकी नहीं और दुःख भी मैं नहीं; इस देह के छेदन-भेदन होने से मेरे आत्मा का छेदन-भेदन नहीं होता; मैं तो चैतन्यसुख का अखण्ड पिण्ड शाश्वत हूँ – ऐसी आत्मश्रद्धा नरक में भी उस जीव को सदा रहा करती है और यह मोक्षमहल की सीढ़ी है। नरक में रहता हुआ भी वह जीव सम्यग्दर्शन के प्रताप से मोक्ष के मार्ग में ही गमन कर रहा है। अहो, सम्यग्दर्शन की कोई अद्भुत अचिन्त्य महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शन को पहचानकर हे जीवों ! तुम अपने में उसकी आराधना करो।

हे जीव ! दुनिया की सब चिन्ता छोड़कर तू आत्मज्ञान के द्वारा अपना हित कर ले। दुनिया नहीं जानती कि सम्यग्दर्शन क्या चीज है! सम्यग्दर्शन किसी को इन्द्रियज्ञान से देखने में नहीं आ सकता। अहा, सम्यग्दर्शन होते ही आत्मा में मोक्ष की मुहर लग

गई और परम सुख का निधान खुल गया। जो स्वयं अनुभव करे, उसे ही उसकी महिमा की सच्ची खबर पड़े। जिसप्रकार महा भाग्य से हाथ में आये हुए चिन्तामणि को कोई मूर्ख समुद्र में फेंक दे, तो फिर वह हाथ में आना मुश्किल है; इसप्रकार चिन्तामणि जैसा यह मनुष्य अवतार यदि सम्यग्दर्शन के बिना खो दिया तो भव के समुद्र में फिर उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है; अतः इस दुर्लभ अवसर में अन्य सब प्रपंच छोड़कर सम्यग्दर्शन अवश्य कर लेना चाहिए। यह अवसर चूकना नहीं चाहिए।

सम्यग्दर्शन जिसका मूल है ऐसा वीतरागधर्म – ''दंसणमूलो धम्मो'' जिनवरदेव से उपदिष्ट है। २५०० वर्ष के पूर्व तीर्थंकर महावीर स्वामी इस भरतक्षेत्र में ऐसा ही उपदेश देते थे और उसे सुनकर अनेक भव्य जीव सम्यक्त्वादि की प्राप्ति कर लेते थे; अभी वर्तमान में सीमंधरादि तीर्थंकर भगवंत विदेह क्षेत्र में ऐसा ही उपदेश दे रहे हैं, और उसे झेलकर कितने ही जीव सम्यक्त्वादि को प्राप्त कर रहे हैं; अभी वर्तमान में यहाँ भरतक्षेत्र में भी हम ऐसे सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक आत्मार्थी जीव को ऐसा उत्तम कल्याणकारी सम्यग्दर्शन अवश्य करना चाहिए। अतः हे विवेकी आत्मा ! इस अवसर में सम्यग्दर्शन का ऐसा माहात्म्य सुनकर तू सावधान हो और सम्यक्त्व प्राप्त कर ले... किसी अनुभवी-ज्ञानी से आत्मस्वरूप समझकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यही मनुष्य जीवन का अमूल्य कार्य है। इसके बिना जीवन को व्यर्थ न गँवा।

शरीर और आत्मा भिन्न है; राग और ज्ञान भिन्न है; शरीर एवं राग से रहित तेरा चैतन्यतत्त्व अखण्ड पूर्ण है; यह जानकर खुश होकर तू सम्यग्दर्शन का उद्यम कर। चैतन्यमय तेरे स्वतत्त्व को पर से भिन्न देखकर प्रसन्नता से अनुभव में ले और मोक्षमार्ग में आ जा। लक्षकोटि सुवर्णमुद्रा देकर भी जिसका एक क्षण मिलना मुश्किल है – ऐसे इस मनुष्य जीवन का एक पल भी वृथा न गँवा। आत्मा की शोभा सम्यग्दर्शन से है; अतः इसी जीवन में सम्यक्त्व कर ले – जिससे आत्मा सुखी बन जाय। अमूल्य मनुष्य जीवन में उससे भी अमूल्य ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले।

बाह्य के लक्ष्मी, परिवार ये कोई तेरे शरण नहीं हैं, पुण्य भी शरण नहीं है, सम्यग्दर्शनादि निजगुण ही शरण है। सम्यग्दर्शन से जीवन की सफलता है और उसी में जीव की शोभा है। ऐसा अच्छा सुयोग पुनः-पुनः नहीं मिलता; अतः ऐसे सुयोग पाकर सम्यग्दर्शन अवश्य करो।

अन्त में फिर एकबार कहते हैं कि हे जीव ! आत्मा को समझकर श्रद्धा करने का यह अवसर आया है उसको सफल कर लेना। हे भाई ! आत्मा का स्वरूप समझकर हित करने योग्य ज्ञानादि तेरे में हैं, तू अपने ज्ञानादि को पर में (संसार के कार्यों में) मत लगा; किन्तु आत्महित के कार्य में जोड़ दे। उपयोग को अंतर्मुख करके वीतराग-विज्ञान प्रगट कर। तेरी बुद्धि को आत्मा में लगाकर सम्यग्दर्शन कर। तू स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हो... अधिक क्या कहें ? चेत...चेत...चेत ! ●

(पृष्ठ 23 का शेष ...)

जीवों की हिंसा के परिणाम उत्पन्न ही नहीं होते – इसलिए एकेन्द्रिय की हिंसा से जैनधर्म बहुत दूर है। स्वभाव के अवलम्बन से जितनी वीतरागता प्रकट हुई उतनी तो निश्चय अहिंसा है और छठे गुणस्थान की भूमिका में शुभराग की वृत्ति उठने पर त्रस-स्थावर की हिंसा के परिणाम न हों वह व्यवहार अहिंसा है। सम्यग्दृष्टि के चौथे गुणस्थान में अभी स्वभाव का अवलम्बन हीन है तथा वह एकेन्द्रिय की हिंसा के परिणामों से विरक्त भी नहीं है। कारणपरमात्मस्वभाव का जितना अवलम्बन लिया उतनी तो वीतरागता प्रकटी और ऐसे स्वभाव के अवलम्बन से जहाँ मुनिदशा प्रकटी, वहाँ विकल्प उठने की दशा में किसी जीव की हिंसा करने की वृत्ति नहीं होती।

परजीव को बचा सके या मार सके, यह बात तो वस्तुस्वभाव में है ही नहीं। यथार्थ जैनधर्म तो अन्तरंग कारणपरमात्मा के अवलम्बन से जितनी वीतरागदशा प्रकट होती है वही है, वही परमार्थ से अहिंसा है। बीच में आने वाला शुभविकल्प व्यवहार अहिंसा है। ज्ञानी जीव उस शुभराग से धर्म नहीं मानता, परमार्थ से तो वह उसका ज्ञाता ही है। निश्चयधर्म तो स्वाश्रय से प्रकट हुई वीतरागता ही है और शुभ के समय अशुभ नहीं होने दिया इस अपेक्षा से उसे व्यवहार धर्म कहा जाता है। ऐसा जैनधर्म एकेन्द्रिय जीवों के वध से बहुत दूर है।

पुनश्च, जैनधर्म सुखसागर का पूर है। द्रव्यस्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भरा है, उस द्रव्यस्वभाव का अवलम्बन लेने पर पर्याय में आनन्द की बाढ़ आ जाती है। ऐसा वीतरागी जैनधर्म जयवन्त वर्तता है। त्रिकाल स्वभाव के अवलम्बन से प्रकटी वीतरागीदशा जयवन्त वर्तती है। ●

नियमसार प्रवचन –

अहिंसाव्रत का स्वरूप

इसीप्रकार (आचार्यवर) श्री समन्तभद्रस्वामी ने (बृहत्स्वयंभूस्तोत्र में श्री नेमिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए ११९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि :–

(शिखरिणी)

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः।।२६।।

(हरिगीत)

अहिंसा परमब्रह्म है सारा जगत यह जानता।
अर गृहस्थ आश्रम में सदा आरंभ होता नियम से।।
बस इसलिए नमिदेव ने दो विध परिग्रह त्यागकर।
छोड़ विकृत वेश सब निर्ग्रन्थपन धारण किया।।२६।।

सारा जगत यह जानता है कि अहिंसा परमब्रह्म है। जिस आश्रम (गृहस्थ) की विधि में लेश भी आरंभ है; उस गृहस्थाश्रम में अहिंसा धर्म की पूर्णत: सिद्धि नहीं हो सकती। यही कारण है कि हे नमिनाथप्रभु ! अत्यन्त करुणावंत आपने द्रव्य और भाव – दोनों प्रकार के परिग्रहों को तथा विकृत वेश को त्यागकर एवं परिग्रह से विरत होकर निर्ग्रंथपना अंगीकार किया है।

(गतांक से आगे....)

अहो ! जीवों की अहिंसा परमब्रह्म है, यह बात जगत में प्रसिद्ध है। स्वयं भी जीव है, पुण्य-पाप से अपने स्वभाव की हिंसा न होने देना अर्थात् स्वभाव के अवलम्बन से वे भाव उत्पन्न न होने देना ही अहिंसा परमब्रह्म है।

छठे गुणस्थान में मुनि को पंच महाव्रत का विकल्प होता है, उसमें पर की हिंसा टली है तथा स्वभाव का आश्रय प्रकट हुआ है अर्थात् अपने आत्मा की भी अहिंसा प्रकटी है। ऐसे मुनि को जैसी परमब्रह्मरूप अहिंसा होती है वैसी गृहस्थ को नहीं होती। जहाँ लेश भी आरम्भ है, ऐसे गृहस्थाश्रम में अहिंसा नहीं होती; अतः उस अहिंसा की सिद्धि के लिए हे नेमिनाथ भगवान! परमकरुणावन्त ऐसे आपश्री ने दोनों ग्रन्थियों को (द्रव्य व भाव दोनों परिग्रहों को) छोड़ा और भावलिंगी निर्ग्रन्थ मुनि हुए।

भगवान को किसी के ऊपर करुणा की वृत्ति नहीं होती, परन्तु भगवान ने जैसा स्वरूप कहा वैसा अपने ज्ञान में भासित हुआ अर्थात् 'भगवान की करुणा हुई' ऐसा कहा जाता है। स्वयं ने स्वयं के आत्मा की करुणा की वहाँ उपचार से कहते हैं कि हे भगवान! 'आपको महान करुणा हुई।' श्रीमद् रायचन्द्र ने भी कहा है कि 'करुणा हम पावत हैं तुम की' वहाँ भी ऐसा ही आशय है।

यहाँ कहते हैं कि हे परमकरुणावन्त भगवान! आपने दोनों प्रकार के परिग्रह को त्यागा – यह निमित्त का कथन है। निश्चय से पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। मुनि के विकृत वेष नहीं होता, सहजदशा होती है। शरीर भी यथाजात प्रमाण सहज नग्न होता है। वस्त्रादि रखना तो विकृत वेष है। एक भी वस्त्र का ताना रखना मुनिपने का निषेधक है, वस्त्र सहित मुनिदशा होती ही नहीं। मुनिदशा में अन्तर में सहज वीतरागता है और बाह्य में भी सहज निर्ग्रन्थता है। वस्त्रधारी साधु सच्चा साधु नहीं। छठे गुणस्थान की वीतरागता प्रकटे और वस्त्रादि बना रहे – ऐसा नहीं बन सकता – ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

वस्त्रधारी तो सम्यग्दृष्टि साधक ब्रह्मचारी अथवा पाँचवें गुणस्थान तक ही हो सकता है; किन्तु छठे-सातवें गुणस्थानरूप मुनिदशाधारी नहीं हो सकता। इसीलिए यहाँ समन्तभद्राचार्य ने कहा कि वस्त्रादि परिग्रह धारण करना तो विकृत वेष है।

हे भगवान! अहिंसा की सिद्धि के लिए आपने वैसे विकृत वेष को छोड़ा, आप परिग्रह में रत नहीं हुये। एकेन्द्रियादि जीवों के मारने का भाव तो कषायभाव है, मुनिदशा में ऐसा भाव नहीं होता। उपदेश-स्वाध्यायादि की वृत्ति छठे गुणस्थान में मुनि को उठती है और फिर क्षणमात्र में ही उसे तोड़कर निर्विकल्प हो जाते हैं।

इस प्रकार छठे-सातवें गुणस्थान में मुनिराज बार-बार झूलते हैं – ऐसी ही मुनिदशा है। इस दशा के अतिरिक्त बाह्य में वस्त्रादि का छूटना तो द्रव्यलिंग है, तथा जो वस्त्रादि सहित हो, जिसे व्यवहार श्रद्धा भी सच्ची न हो, उसे तो द्रव्यलिंगी भी नहीं कहा जा सकता। वीतरागी परिणति सहित व्यवहार की वृत्ति उठे, उसकी यह बात है। स्वभाव का भान और स्थिरता वाले मुनि को शुभराग आवे उसको व्यवहार से अहिंसाव्रत कहते हैं। निश्चय से तो अन्तर में स्वभाव के आश्रय से जो वीतरागता है वहीं अहिंसा है – वही धर्म है।

अब ५६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं :–

(मालिनी)

त्रसहतिपरिणामध्वांतविध्वंसहेतुः
सकलभुवनजीवग्रामसौख्यप्रदो यः।
स जयति जिनधर्मः स्थावरैकेन्द्रियाणां
विविधवधविदूरश्चारुशर्माब्धिपूरः ।।७६ ।।

(हरिगीत)

त्रसघात के परिणाम तम के नाश का जो हेतु है।
और थावर प्राणियों के विविध वध से दूर है।।
आनन्द सागरपूर सुखप्रद प्राणियों को लोक के।
वह जैनदर्शन जगत में जयवंत वर्ते नित्य ही।।७६।।

त्रसघात के परिणामरूप अंधकार के नाश का जो हेतु है, सकल लोक के जीवसमूह को जो सुखप्रद है, स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के विविध वध से जो बहुत दूर है और सुन्दर सुखसागर का जो पूर है, वह जिनधर्म जयवन्त वर्तता है।

मुनिराज कहते हैं कि जिनधर्म जयवन्त वर्तता है। आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से प्रकट होने वाली वीतरागदशा को जिनधर्म कहते हैं, इसके अतिरिक्त बाहर में जिनधर्म नहीं है। आत्मा के स्वभाव के आश्रय से उद्भूत वीतरागी श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र ही जैनधर्म है। ऐसा जैनधर्म जिसके प्रकट हुआ है उस मुनि के त्रसघात के परिणामरूप अन्धकार का नाश हो गया है। स्वभाव के अवलम्बन से मुनि की दशा ही ऐसी होती है कि उन्हें त्रस जीवों के घात का परिणाम होता ही नहीं; इसलिए आत्मा का वीतरागभावरूप जैनधर्म त्रसघात के परिणाम के नाश का हेतु है।

पुनश्च, जैनधर्म सकल लोकसमूह को सुखप्रद है। आत्मा की जो वीतरागी निर्मल पर्याय प्रकटी वह सुखरूप है और वह जिसके आश्रय से प्रकटे ऐसा द्रव्यस्वभाव भी त्रिकाल सुखरूप है। इस द्रव्य के आश्रय से वीतरागता और सुख प्रकट होता है, अर्थात् जैनधर्म जीवों को सुखप्रद है।

ज्ञायकमूर्ति आत्मा के आश्रय से प्रकट होनेवाला वीतरागभाव सर्वजीवों को सुखदायक है। जितने अंशों में वीतरागता प्रकटी है वह जैनधर्म है। जैनधर्म स्थावर एकेन्द्रिय जीवों के वध से भी बहुत दूर है। मुनि के वीतरागदशा प्रकट होने से एकेन्द्रिय

(शेष पृष्ठ 20 पर ...)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : यदि परपदार्थ को ज्ञानी अपना नहीं मानते तो मेरी पुस्तक, मेरी वस्तु - ऐसा क्यों बोलते हैं? यह तो कपट है।

उत्तर : भाई ! भाषा में ऐसा ही बोला जाता है; तथापि अंतर में पर को अपना नहीं मानते है, यह कपट नहीं है। बोलने की क्रिया ही आत्मा की नहीं, वह तो जड़ है, उस समय ज्ञानी का अभिप्राय क्या है, वह समझना चाहिए।

प्रश्न : भूतकाल के दु:खों का स्मरण किस काम का ?

उत्तर : वैसे दु:ख पुन: न आवें - इसलिए उन्हें याद करके ज्ञानी अपने हृदय में वैराग्य करता है। मुनिराज भी भूतकाल के दु:खों को याद करके कहते हैं कि मैं भूतकाल में दु:खों को याद करता हूँ, तब कलेजे में घाव लग जाता है। देखो ! सम्यग्दृष्टि मुनि है, आनन्द का प्रचुर वेदन है, तथापि भूतकाल के दु:खों को याद करते हैं। किसलिए ? कि वैसे दु:ख फिर से प्राप्त न हों; इसलिए उन्हें याद कर वैराग्य बढ़ाते हैं।

प्रश्न : यदि पूजा-भक्ति आदि शुभराग में धर्म नहीं है, तो श्रावक के लिए धर्म क्या है ?

उत्तर : देह-मन-वाणी-राग से भिन्न भगवान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान करना तथा आत्मा का अनुभव करना यही श्रावक का धर्म है।

प्रश्न : तब क्या श्रावक पूजा-भक्ति आदि कार्य न करे ?

उत्तर : श्रावक को पूजा-भक्ति का शुभराग आता है, आये बिना रहता नहीं; परन्तु वह धर्म नहीं है। शुभराग है और उससे भिन्न आत्मा का अनुभव करना धर्म है।

प्रश्न : निश्चय के साथ होने वाले उचित राग को क्रोध कहते हैं क्या ?

उत्तर : नहीं, यहाँ समयसार गाथा 69/70/71 में जिसको आत्मस्वभाव की रुचि नही है; अनादर है; उसके रागभाव को क्रोध कहा है अर्थात् मिथ्यात्व सहित

होनेवाले रागादिभाव को क्रोध कहा है। ज्ञानी में होनेवाले अस्थिरता के राग का तो ज्ञानी को ज्ञान होता है। ज्ञानरूप परिणमनेवाले ज्ञानी को आनन्दरूप आत्मा रुचता है - अनुभव में आता है; इसलिए उसे राग की रुचिरूप क्रोध होता ही नहीं; अत: क्रोध मालूम ही नहीं पड़ता। अज्ञानी को दु:खरूपभाव-रागभाव रुचता है और आनन्दरूप भाव रुचता नहीं; इसलिए उसको क्रोधादि का ही अनुभव होता है, आत्मा मालूम नहीं पड़ता। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसकी तो रुचि नहीं और पुण्य-परिणाम की रुचि है - यह आत्मा का अनादर है; अत: ऐसे अज्ञानी को अपने स्वरूप के प्रति क्रोध है - ऐसा समझना।

प्रश्न : ज्ञानी की परीक्षा अज्ञानी जीव किस विधि से करते हैं ? वे अज्ञानी कितने प्रकार के हैं ? तथा ज्ञानी की परीक्षा की सही विधि क्या है ?

उत्तर : ज्ञानी की गलत विधि से परीक्षा करने वाले अज्ञानी तीन प्रकार के हैं और वे तीन प्रकार से परीक्षा करते हैं।

प्रथम नम्बर के अज्ञानी वे हैं, जो मात्र बाहर के वेष से परीक्षा करते हैं अर्थात् मात्र बाह्य वेष देखकर ही उनमें ज्ञानी होने की कल्पना कर लेते हैं। **द्वितीय** नम्बर के अज्ञानी वे हैं, जो बाहर की क्रिया देखकर परीक्षा करते हैं। अर्थात् बाहर में चलना, फिरना, उठना, बैठना, आहार, शयन आदि में सावधानी, शुद्धता आदि देखकर ही ज्ञानी मान बैठते हैं। **तृतीय** नम्बर के अज्ञानी वे हैं, जो कषाय की मंदता देखकर परीक्षा करते हैं अर्थात् प्रतिकूल संयोगों के मिलने पर जो क्रोधादि नहीं करते, परिणामों में सरलता रखते हैं, बाह्य परिग्रह का विशेष लोभ नहीं रखते, शरीर व भोजनादि के प्रति अधिक आसक्ति नहीं रखते, उन्हें ज्ञानी होना स्वीकार कर लेते है; परन्तु यह ज्ञानी के पहचानने की वास्तविक रीति नहीं है।

जो सच्चा जिज्ञासु है, वह तो अन्तर की दृष्टि से परीक्षा करता है कि सामनेवाले जीव का श्रद्धा-ज्ञान कैसा है ? उसे चैतन्यभगवान की श्रद्धा है या नहीं ? राग से भिन्न चैतन्य स्वभाव की प्रतीति है या नहीं ? राग होता है, उससे लाभ मानता है या उससे भिन्न रहता है ? उसकी रुचि का जोर किस तरफ काम करता है ? उसके वेदन में किसकी मुख्यता है ? इसप्रकार अन्दर की श्रद्धा और ज्ञान से ही ज्ञानी की पहचान सुपात्र जीव करता है।

समाचार दर्शन -

दशलक्षण महापर्व सानन्द संपन्न

सार्वभौमिक एवं त्रैकालिक दशलक्षण महापर्व सम्पूर्ण देश-विदेश में दिनांक 30 अगस्त से 8 सितम्बर, 2014 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। पर्व के दौरान सभी स्थानों पर मंदिरों में पूजन-विधान, प्रवचन, प्रौढ़ एवं बालकक्षाओं की धूम रही। लगभग सभी स्थानों पर सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति एवं रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से महती धर्म प्रभावना हुई। देश के कोने-कोने से प्राप्त समाचारों को यहाँ संक्षेप में प्रकाशित किया जा रहा है।

जयपुर (राज.) : यहाँ दशलक्षण महापर्व के अवसर पर श्री टोडरमल स्मारक भवन में प्रात: दशलक्षण विधान के उपरान्त पण्डित रमेशचंदजी लवाण द्वारा समयसार पर प्रवचन, दोपहर में श्रीमती ज्योति सेठी द्वारा गुणस्थान विवेचन पर कक्षा, सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति एवं रात्रि में पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल द्वारा समयसार एवं धर्म के दशलक्षण पर प्रवचन हुये। तत्पश्चात् उपाध्याय कनिष्ठ, वरिष्ठ के विद्यार्थियों व वीतराग विज्ञान महिला मंडल द्वारा ज्ञानवर्धक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ। सुगन्ध दशमी के दिन अ.भा. जैन युवा फैडरेशन जयपुर महानगर द्वारा 'आह जैन वाह जैन' विषय पर आकर्षक सजीव झांकी लगाई गई, जिसे जयपुर के लगभग 2000-2500 लोगों ने देखा और उसकी भरपूर सराहना की। विधि-विधान के कार्य पण्डित गोम्मटेशजी शास्त्री, पण्डित करणजी शास्त्री एवं पण्डित साकेतजी शास्त्री ने संपन्न कराये।

जौहरी बाजार स्थित घी वालों के रास्ते में श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी बड़ा मंदिर में प्रात: पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल द्वारा दशलक्षण धर्म पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला।

उदयपुर (राज.) : यहाँ इस वर्ष डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल प्रवचनार्थ पधारे और इस अवसर पर एक नवीन प्रयोग किया गया कि उदयपुर में जहाँ-जहाँ भी स्वाध्याय की गतिविधियाँ चलती हैं उन सभी स्थानों पर सायंकालीन प्रवचन इत्यादि के कार्यक्रम नहीं रखकर एक बड़े हॉल में सामूहिक कार्यक्रम रखा गया।

इसके अन्तर्गत जैन युवा फैडरेशन उदयपुर ने हिरणमगरी सेक्टर-11 में स्थित आलोक स्कूल का ऑडिटोरियम (जिसमें लगभग 3000-3500 लोग बैठ सकते हैं) को लेकर वहाँ सायंकालीन कार्यक्रम आयोजित किए गए।

यहाँ दिगम्बर-श्वेताम्बर के सभी संप्रदायों के लगभग 2000-2500 साधर्मी प्रतिदिन पधारकर डॉ. भारिल्लजी द्वारा दशधर्मों पर हो रहे प्रवचनों का लाभ लेते थे। गायरियावास में डॉ. भारिल्ल की क्षमावाणी के दिन चर्चा हुई, वहाँ पर एक दिन पत्रकार सम्मेलन हुआ एवं दो दिन आकाशवाणी में अहिंसा, सत्य, संयम, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य पर वार्ता हुई, जो समय-समय पर रिले होगी। पर डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों के पूर्व पण्डित गुलाबचंदजी बीना के अतिरिक्त उदयपुर के स्थानीय विद्वान पण्डित राजकुमारजी शास्त्री, डॉ. महावीरप्रसादजी शास्त्री, पण्डित ऋषभजी शास्त्री, पण्डित खेमचंदजी शास्त्री, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित जिनेन्द्रजी शास्त्री एवं पण्डित भोगीलालजी जैन द्वारा विविध विषयों पर प्रवचनों का लाभ मिला। इस अवसर पर लगभग 94320 घंटों की सी.डी. व डी.वी.डी. एवं लगभग 23 हजार रुपये का सत्साहित्य घर-घर पहुँचा।

प्रतिदिन प्रवचनों के उपरान्त अलग-अलग मंदिरों के बच्चों द्वारा रोचक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए गये।

इसके अतिरिक्त प्रात:काल विविध स्थानों पर विविध विद्वानों द्वारा प्रवचनों का आयोजन हुआ, जिसमें **मुमुक्षु मण्डल** में पण्डित पीयूषजी शास्त्री द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार पर, **आदर्श नगर गायरियावास** में पण्डित जिनेन्द्रजी शास्त्री द्वारा, **नेमीनाथ जैन कॉलोनी** में डॉ. महावीरजी शास्त्री द्वारा समयसार पर, **सेक्टर 11** में पण्डित गुलाबचंदजी बीना द्वारा समयसार पर, **त्रिकालवर्ती जिनालय सेक्टर 14** में पण्डित खेमचंदजी शास्त्री द्वारा रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर एवं **देवाली** में पण्डित वीरचंदजी शास्त्री द्वारा धर्म के दशलक्षण पर प्रवचनों का लाभ मिला।

इसप्रकार पूरे उदयपुर शहर में दशलक्षण पर्व अत्यंत उत्साह के साथ मनाया गया।

मुम्बई : ज्ञातव्य है कि उदयपुर के पूर्व श्वेताम्बर पर्व के अवसर पर मुम्बई में अध्यात्म स्टडी सर्किल के तत्त्वावधान में भारतीय विद्या भवन में 8 दिनों तक डॉ. भारिल्ल द्वारा समयसार कर्ताकर्माधिकार पर प्रवचनों का लाभ मिला।

मुम्बई-भूलेश्वर : यहाँ श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मंदिर में समाज के विशेष आग्रह पर जयपुर से श्री टोडरमल महाविद्यालय के उपप्राचार्य पण्डित शांतिकुमारजी पाटील पधारे। प्रात: श्री जिनेन्द्र अभिषेक एवं पूजन संगीतमय वातावरण में अत्यंत उत्साहपूर्वक हुई, जिसमें पण्डितजी का मार्गदर्शन एवं पूजन के विशिष्ट छन्दों का अर्थ सुनने को मिला। पूजन के पश्चात् तत्त्वार्थसूत्र के एक-एक अध्याय पर एवं रात्रि में दशलक्षण धर्म पर प्रवचनों का लाभ मिला। क्षमावाणी के दिन प्रात: सीमन्धर जिनालय में एवं दोपहर में भूलेश्वर मंदिर में क्षमावाणी पर विशेष व्याख्यान हुआ।

दशलक्षण महापर्व के पूर्व दिनांक 22 से 28 अगस्त तक अध्यात्म स्टडी सर्किल द्वारा आयोजित व्याख्यानमाला के अन्तर्गत प्रतिदिन दोनों समय विभिन्न सर्किलों में विभिन्न विषयों पर व्याख्यान हुए।

न्यूजर्सी (अमेरिका) : यहाँ 'इन्टरनेशनल जैन संघ' के तत्त्वावधान में डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के सानिध्य में दशलक्षण पर्व बहुत उत्साहपूर्वक मनाया गया।

आपके द्वारा प्रतिदिन रात्रि में दो प्रवचनों का लाभ मिला। प्रतिक्रमण के पश्चात प्रथम

प्रवचन में क्रमबद्धपर्याय, नय पद्धति, अनुयोग, कर्म सिद्धांत, अकर्तावाद आदि विषयों पर मार्मिक व्याख्यान का लाभ मिला एवं द्वितीय प्रवचन में दशलक्षण धर्म पर मार्मिक व्याख्यानों का लाभ मिला। पर्व के दौरान 5 दिन प्रात:काल आत्मार्थियों की जिज्ञासा शांत करने हेतु शंका-समाधान का कार्यक्रम रखा गया। प्रतिदिन सायंकाल 4 से 5 बजे तक इन्टरनेट पर अमेरिका, कनाडा, नैरोबी एवं सिंगापुर के मुमुक्षुओं के लिए 16 कारण भावना पर मार्मिक प्रवचन किए गए।

ज्ञातव्य है कि पर्व के दौरान जर्सी सिटी दिगम्बर जैन मंदिर एवं दिगम्बर जैन मंदिर न्यूयार्क में भी आपके मार्मिक उद्बोधन का लाभ मिला।

दिनांक 7 सितम्बर को पण्डित राजमलजी पवैया द्वारा रचित वृहत् शांतिविधान का विशेष आयोजन श्री हिमांशु भाई के सहयोग से तैयार की गई सचित्र प्रोजेक्टर स्लाइड्स द्वारा किया गया, जिसमें लगभग 300 लोगों ने लाभ लिया। विधि विधान के समस्त कार्य डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के निर्देशन में संपन्न हुए। विधान आयोजन में श्री पंकजजी जैन एवं उनके सहयोगियों का योगदान रहा।

सायंकाल दोनों प्रवचनों के मध्य स्थानीय साधर्मियों एवं बालक-बालिकाओं द्वारा ज्ञानवर्धक प्रस्तुतियां दी गई, जिसमें मोक्षा सेठ एवं पूजा जैन का विशेष सहयोग रहा। समस्त आयोजन में श्री हिमांशुभाई, श्री आलोकजी, श्री अवनीश जैन, श्री नीरव शाह एवं समस्त आई.जे.एस. सदस्यों का सक्रिय सहयोग रहा। **– सुधीर जैन**

अहमदाबाद-मेघाणी नगर (गुज.) : यहाँ पर्व के अवसर पर विदुषी डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया मुम्बई द्वारा सरल, सुबोध भाषा में 'आत्मानुभूति कैसे ?' विषय पर प्रवचनों का लाभ मिला। आपकी प्रेरणा से लगभग 25 हजार रुपये का साहित्य घर-घर पहुँचा।

दिल्ली-आत्मार्थी ट्रस्ट : यहाँ पर्व के अवसर पर डॉ. उत्तमचंदजी छिन्दवाड़ा द्वारा प्रात: नियमसार एवं रात्रि में समयसार पर प्रवचनों का लाभ मिला। रात्रि के प्रवचनों को अमेरिका के भाई-बहिन भी सुनते थे, अत: 15 मिनट तक उनकी शंकाओं का समाधान भी हुआ। इसके अतिरिक्त स्थानीय विद्वान ब्र.जतीशचंदजी शास्त्री, डॉ.सुदीपजी शास्त्री, पण्डित राकेशजी नांगलोई, पण्डित ऋषभजी शास्त्री उस्मानपुर, पण्डित संदीपजी, पण्डित विवेकजी विश्वासनगर आदि विद्वानों के प्रवचनों का भी लाभ मिला। साथ ही सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, पांच भाव, चार अनुयोग, सात तत्त्व, देव-शास्त्र-गुरु, द्रव्य-गुण-पर्याय, क्रमबद्धपर्याय आदि विषयों पर श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर, आचार्य अकलंक जैन न्याय महाविद्यालय बांसवाड़ा एवं आचार्य धरसेन दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय कोटा के विद्वानों द्वारा गोष्ठियों का आयोजन किया गया। प्रात: एवं दोपहर में विदुषी राजकुमारी जैन द्वारा तत्त्वार्थसूत्र एवं

प्रवचनसार पर कक्षायें ली गईं। दोपहर में आत्मार्थी कन्याओं द्वारा प्रवचन एवं रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

जयपुर-आदर्शनगर स्थित मुलतान दिग. जैन मंदिर में पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल द्वारा क्लास रूम सेमिनार पद्धति से प्रात:काल धर्म क्यों, दु:ख कहाँ, भगवान : पूज्यत्व का कारण, आकुलता रहित जीवन का एक ही उपाय : क्रमबद्धपर्याय, कण-कण की स्वतंत्रता आदि विविध विषयों पर एवं सायंकाल दशलक्षण धर्म एवं सदाचार पर प्रवचनों का लाभ मिला। सभी श्रोतागणों विशेषकर नवयुवको पर प्रवचनों का बहुत प्रभाव पड़ा एवं धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। समाज ने प्रवचनों से प्रभावित होकर महिने में एक बार इसप्रकार के प्रवचन करने का निवेदन किया। इस अवसर पर 20 हजार रुपये का सत्साहित्य एवं 15 हजार रुपये की सी.डी. घर-घर पहुँची। **– सुभाष जैन, मंत्री**

भिण्ड (म.प्र.) : यहाँ पर्व के अवसर पर परमागम मंदिर में डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्यरत्न' द्वारा प्रात: समयसार पर, दोपहर में गोम्मटसार एवं रात्रि में दशलक्षण धर्म पर प्रवचनों का लाभ मिला।

सागर (म.प्र.) : यहाँ महावीर जिनालय में पर्व के अवसर पर पण्डित संजयजी सेठी जयपुर द्वारा प्रात: समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पर, दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र के छठवें अध्याय पर कक्षा एवं रात्रि में दशलक्षण धर्म पर प्रवचनों का लाभ मिला। प्रात:काल स्थानीय विद्वान पण्डित अखिलेशजी द्वारा दशलक्षण मण्डल विधान किया गया। रात्रि में नवयुवा एवं महिला मण्डल द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित हुए। कार्यक्रम में लगभग 400-500 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। **– संतोष जैन, मंत्री**

कोटा (राज.) : यहाँ इन्द्र विहार में पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा द्वारा प्रात: समयसार पर, दोपहर में 47 शक्तियों पर एवं रात्रि में दशलक्षण धर्म पर प्रवचनों का लाभ मिला।

भीलवाड़ा (राज.) : यहाँ पर्व के अवसर पर पण्डित विक्रांतजी शाह सोलापुर द्वारा सीमंधर जिनालय व पुराना मंदिर में प्रात: प्रवचनसार एवं रात्रि में धर्म के दशलक्षण पर प्रवचनों का लाभ मिला। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुए।

औरंगाबाद (महा.) : यहाँ पर्व के अवसर पर श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर द्वारा प्रात: समयसार पर प्रवचन एवं दोपहर में स्तोत्रों के अर्थ पर विशेष कक्षा का लाभ मिला। सायंकाल पण्डित स्वप्निलजी शास्त्री द्वारा पाठशाला का संचालन किया गया। रात्रि में मेरी भावना के आधार पर विशेष प्रवचन के पूर्व स्थानीय विद्वान श्री संजयजी राउत व श्री विशालजी पाटनी के दशलक्षण धर्म पर व्याख्यान हुए।

प्रात:काल पण्डित विरागजी के निर्देशन में दशलक्षण विधान हुआ, जिसमें श्री कुशलजी यंबल का सहयोग रहा। **– निशिकांत जैन**

अजमेर (राज.) : यहाँ पर्व के अवसर पर सीमंधर जिनालय एवं ऋषभायतन में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री खैरागढ द्वारा प्रात: समयसार एवं रात्रि में दशलक्षण धर्म पर प्रवचनों का लाभ मिला। प्रात:काल पण्डित राजमलजी पवैया द्वारा रचित दशलक्षण विधान का आयोजन दोनों स्थानों पर क्रमश: पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल एवं पण्डित तेजकुमारजी गंगवाल इन्दौर द्वारा किया गया। रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन ऋषभायतन में हुआ।

– प्रकाशचंद पाण्ड्या

सेलू (महा.) : यहाँ पर्व के अवसर पर पण्डित आराध्यजी शास्त्री टडैया मुम्बई द्वारा बारह भावना एवं धर्म के दशलक्षण पर प्रवचनों का लाभ मिला। साथ ही पण्डित रिमांशुजी शास्त्री द्वारा विधान, प्रवचन एवं बालकक्षाओं का लाभ मिला। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत जैन महिला संघ द्वारा ''मैना सुन्दरी'' नाटक एवं पण्डित आराध्य टडैया द्वारा विविध कार्यक्रम कराये गये।

मीनिया पोलिस (अमेरिका) : यहाँ पर्व के अवसर पर श्री ताराचंदजी सोगानी जयपुर द्वारा श्री महावीर जैन मंदिर में प्रतिदिन पूजन-विधान के उपरांत दशलक्षण धर्म पर प्रवचनों का लाभ मिला।

चेन्नई : यहाँ पर्व के अवसर पर विभिन्न दिगम्बर जिनालयों में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रवचन हुए, जो निम्नानुसार है -

(1) अंबतूर - पण्डित जम्बुकुमारजी शास्त्री।

(2) कोलतुर - पण्डित जम्बुकुमारजी शास्त्री, डॉ. उमापतिजी शास्त्री, पण्डित इलंगोवनजी शास्त्री, पण्डित नाभिराजनजी शास्त्री, पण्डित विनोदकुमारजी जैन, पण्डित महावीरजी जैन।

(3) आदमबाक्कम - डॉ. उमापतिजी शास्त्री, पण्डित निपुणजी शास्त्री, पण्डित राजेशजी शास्त्री।

आवश्यकता

(1) धार्मिक कक्षाओं में अध्यापन हेतु एक पूर्णकालिक शास्त्री विद्वान की।

मासिक आय-35000 से 50000 रुपये।

संपर्क सूत्र - अध्यात्मप्रकाश भारिल्ल, निर्देशक, जैन अध्यात्म स्टडी प्रोग्राम, सीमंधर जिनालय, कालबा देवी रोड़, मुम्बई फोन - 9821016988

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें -

वेबसाईट - www.vitragvani.com

संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

आगामी कार्यक्रम...

टोडरमल स्मारक भवन में विधान महोत्सव

कार्तिक माह के अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर गुरुवार दिनांक 30 अक्टूबर से गुरुवार दिनांक 6 नवम्बर तक ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री देवलाली के विधानाचार्यत्व में सिद्धचक्रमंडल विधान महोत्सव सम्पन्न होने जा रहा है।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा आदि विद्वानों का प्रवचन-कक्षा आदि के माध्यम से लाभ प्राप्त होगा।

सभी साधर्मीजन महोत्सव का लाभ लेने हेतु हार्दिक आमंत्रित हैं। बाहर से पधारने वाले सभी साधर्मीजनों को नि:शुल्क आवास एवं सशुल्क भोजन की व्यवस्था उपलब्ध है। अपने आने की सूचना 25 अक्टूबर तक जयपुर कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

सर्वोत्तम नागरिक का पुरस्कार प्राप्त

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के स्नातक डॉ. शुद्धात्मप्रकाश जैन को दिनांक 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के उपलक्ष्य में वर्ष 2014 का सर्वोत्तम नागरिक पुरस्कार प्राप्त हुआ। यह पुरस्कार नई दिल्ली के इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस द्वारा उन्हें उनकी कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी और लगनपूर्वक देशसेवा के लिए प्रदान किया गया।

इसके अतिरिक्त दिनांक 19 को अखिल भारतीय ज्योतिष संस्था संघ नई दिल्ली द्वारा 'देवज्ञ शिरोमणि' की उपाधि से भी विभूषित किया गया।

ज्ञातव्य है कि डॉ. जैन को पूर्व में 'प्रो.रामगोपाल सोनी मैमोरियल आवार्ड ऑफ बेस्ट ऑर्थर 2011' प्राप्त हो चुका है।

जिनेन्द्र पूजन संग्रह का विमोचन

जबलपुर (म.प्र.) : यहाँ श्री वीतराग विज्ञान मण्डल द्वारा दिनांक 10 अगस्त को वात्सल्य पर्व के अवसर पर पण्डित राजेन्द्रकुमार जी जैन जबलपुर द्वारा रचित 'जिनेन्द्र पूजन संग्रह' का विमोचन किया गया। पुस्तक का संपादन पण्डित विरागजी शास्त्री द्वारा किया गया है। इच्छुक साधर्मीजन **संपर्क करें -** 09200099200, 09300642434

छहढाला प्रवचन शब्दश: प्रकाशित

आध्यात्मिक सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती वर्ष में छहढाला के समस्त प्रवचन दो भागों में हिन्दी भाषा में प्रकाशित किए गए हैं। इसका प्रकाशन श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई द्वारा किया गया है। ग्रन्थ प्राप्ति के इच्छुक साधर्मीजन संपर्क करें - 09300642434 (विराग शास्त्री, जबलपुर), 02226130820 (मुम्बई)

श्री टोडरमल स्मारक भवन में संचालित तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में आप निम्न प्रकार से सहयोग कर सकते हैं

1. पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक, संरक्षक बनकर।[1]
2. आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों में आयोजन हेतु निम्न रूप से सहयोग किया जा सकता है-

क. परम संरक्षक - 1 लाख रुपये[2] **ख.** संरक्षक - 25 हजार

ग. शिविर के आमंत्रणकर्ता - 51 हजार **घ.** विधान के आमंत्रणकर्ता - 11 हजार[3]

3. विद्यालय में 1 छात्र के अध्ययन हेतु निम्न रूप से सहयोग प्रदान किया जा सकता है -

क. 40 हजार प्रतिवर्ष (5 वर्ष तक) या 5 वर्ष के लिए एक साथ 2 लाख रुपये देकर।

ख. 1 छात्र के आजीवन अध्ययन हेतु - एक मुश्त 5 लाख रुपये देकर।

ग. आचार्य महाविद्यालय फण्ड एवं छात्र विकास फण्ड में कोई भी राशि देकर।

4. जी-जागरण पर प्रतिदिन डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के व्याख्यान प्रात: 6.30 से 7.00 बजे तक आते हैं। उनके प्रसारण हेतु 6000/- रुपये प्रतिदिन के हिसाब से 1 लाख 80 हजार प्रतिमाह व्यय होते हैं। कम से कम 10 दिन की स्वीकृति देकर तत्त्वज्ञान के प्रचार में सहयोग प्रदान कर सकते हैं। दातार का नाम सहयोगी के रूप में टी.वी. पर व्याख्यान के पहले और बाद में दिया जाएगा।
5. भोजनशाला के संचालन एवं विकास हेतु निम्न रूप से सहयोग प्रदान किया जा सकता है-

क. एक भोजन तिथि के रूप में 21000/- रुपये की राशि देकर।

ख. एक दिन का भोजन सहयोग - 15 हजार रुपये।

ग. एक समय का मिष्ठान्न भोजन सहयोग - 11 हजार रुपये।

घ. एक समय का भोजन सहयोग - 6100/- रुपये।

च. एक समय के नाश्ते हेतु - 2100/- रुपये।

छ. टेबिल-कुर्सी (एक सेट) का सहयोग - 7500/- रुपये।

ज. भोजन सहयोग हेतु कोई भी राशि/सामग्री/उपकरण देकर सहयोग किया जा सकता है।

6. सत्साहित्य प्रकाशन हेतु निम्न रूप से सहयोग प्रदान किया जा सकता है -

क. 'साहित्य की कीमत करने में' अनुदान देकर।

ख. साहित्य प्रकाशन ध्रुवफण्ड में कोई भी राशि देकर।

ग. ग्रन्थमाला के सदस्य के रूप में 1500/- रुपये देकर।

घ. आपकी ओर से सत्साहित्य के नि:शुल्क वितरण हेतु सहयोग देकर।

7. **क.** मंदिर पूजन में स्थायी पूजन फण्ड हेतु पूजन तिथि के रूप में 1100/- रुपये की राशि देकर।

ख. मंदिर की सामग्री (टेबिल/पाटा/अलमारी/द्रव्य....) के लिए कोई भी राशि देकर।

8. वीतराग-विज्ञान मासिक पत्रिका के प्रकाशन में निम्न रूप में अनुदान देकर सहयोग प्रदान किया जा सकता है -

क. संरक्षक -21 हजार, **ख.** परम सहायक - 11 हजार,

ग. सहायक - 5100/- **घ.** विशिष्ट सहायक - 1100/-

च. 1 अंक का प्रकाशन सहयोग - 11 हजार[4]

9. जैनपथप्रदर्शक समाचार-पत्र में अपने धार्मिक आयोजनों का विज्ञापन देकर अथवा संरक्षक के रूप में 11 हजार की राशि देकर या 1 अंक के प्रकाशन हेतु 5100/- रुपये की राशि देकर।
10. रात्रिकालीन पाठशालाओं के संचालन हेतु 6 हजार रुपये (प्रति पाठशाला के हिसाब से) वार्षिक देकर सहयोग प्रदान किया जा सकता है।

---

1. दातार का नाम प्रवचन मण्डप के पास बने सूचना पट्ट पर लिखा जायेगा। **2.** दातार का नाम शिविर की पत्रिका में आजीवन 'शिविर के परमसंरक्षक' के रूप में प्रकाशित होता रहेगा।

3. दातार का नाम शिविर की पत्रिका में शिविर/विधान के आमंत्रणकर्ता 'संरक्षक' के रूप में प्रकाशित किया जायेगा।

4. दातार का नाम पत्रिका के 1 अंक में छापा जायेगा।

-: स्वीकृति पत्र :-

मैं .....योजना हेतु .....रुपये की राशि एकमुश्त/.....वर्षों तक देने हेतु स्वीकृति प्रदान करता हूँ।

नाम .....पता .....

.....

.....मोबाईल .....

ई-मेल..... हस्ताक्षर दातार

नोट :- आप अपनी दानराशि 'पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट' के नाम से चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 जयपुर कार्यालय के पते पर अथवा पंजाब नेशनल बैंक के खाता संख्या 0247000100024619 **IFS Code PUNB0024700** में ऑन लाइन भी जमा करा सकते हैं। आप जो भी राशि बैंक में जमा करावे उसकी सूचना जयपुर कार्यालय को अवश्य भेजें ताकि उसका जमा/खर्च कर रसीद भेजी जा सके।

शोक समाचार

(1) टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक दलपतपुर (म.प्र.) निवासी पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री का दशलक्षण पर्व के प्रथम दिन दिनांक 30 अगस्त 2014 को 22 वर्ष की उम्र में सड़क दुर्घटना में देहावसान हो गया। आप टोडरमल महाविद्यालय से शास्त्री पूर्ण करने के पश्चात लगभग दो वर्ष तक टोडरमल महाविद्यालय में वार्डन पद पर रहे एवं देहावसान के पूर्व चैतन्यधाम-अहमदाबाद (गुज.) में कार्यरत थे। आपके चिर वियोग से दिगम्बर जैन समाज ने एक उदीयमान युवा विद्वान खो दिया।

(2) उदयपुर (राज.) निवासी श्रीमती पानीबाई धर्मपत्नी स्व.श्री मोहनलालजी जैन (वजुवावत) का दिनांक 1 अगस्त 2014 को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट हेतु 1100/- रुपये प्राप्त हुये।

(3) गुवाहाटी (असाम) निवासी श्री नेमीचंदजी पाण्ड्या की स्मृति में परिवारजनों द्वारा वीतराग-विज्ञान एवं जैनपथप्रदर्शक हेतु 501/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्माएं चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

निबन्ध प्रतियोगिता का परिणाम घोषित

दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप 'वर्धमान' कोटा द्वारा आयोजित निबन्ध प्रतियोगिता ''आधुनिकता की दौड़ में सिमटते संस्कार'' का परिणाम घोषित कर दिया गया है, जिसमें सफल प्रतियोगी निम्न प्रकार हैं -

प्रथम स्थान - 1. श्रीमती ऋतु विकास वात्सल्य छिन्दवाड़ा,
2. प्रेमलता, शोधछात्रा, नई दिल्ली

द्वितीय स्थान -1. डॉ. सुरेश जैन बूंदी, (राज.), 2. हेमलता शोधछात्रा नई दिल्ली,
3. डॉ. संस्कृति जैन कोटा (राज.)

तृतीय स्थान - 1. संदीप बाबूलाल जैन दीप खरगोन, 2. श्रीमती ममता जैन सुरैचा सीतापुर,
3. अनितेश जैन मंगलार्थी, मंगलायतन

सान्त्वना - 1. चौ.रामप्रकाश जैन 'राही' शिवपुरी, 2. अर्पित जैन मंगलार्थी, मंगलायतन
3. मानसी जैन ललितपुर

प्रतियोगिता में 77 प्रविष्टियाँ प्राप्त हुई। इसके लिए सभी प्रतियोगियों का हार्दिक आभार व धन्यवाद।

ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर
बढते चरण...

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में विश्व के सबसे ऊँचे जैन सिंहद्वार का दृश्य
(मुख्य सहयोगदाता - श्रीमान् रसिकलाल माणिकचन्द धारीवाल, पूना)

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. RJ/JPC/M-32/2012-14*

ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर
बढते चरण...

इन्दौर में बन रहे ढाईद्वीप जिनायतन में 27900 स्क्वायर फीट आर.सी.सी. भरे हुए डोम का दृश्य

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्राइवेट लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**